जैन साधना का इच्छायोग

कविरत्न श्रद्धेय श्री अमरचन्द्रजी महाराज

जैन धर्म की साधना इच्छा योग की साधना है—सहज योग की साधना है। जिस साधना में बलप्रयोग हो, वह साधना निर्जीव बन जाती है। साधना के महापथ पर अग्रसर होने वाला साधक अपनी शक्ति के अनुरूप ही प्रगति कर सकता है। साधना की जाती है, लादी नहीं जा सकती।

संसार में जैन धर्म अहिंसा का, शान्ति का, प्रेम का और मैत्री का अमर सन्देश लेकर आया है। उस का विश्वास प्रेम में है, तलवार में नहीं। उसका धर्म आध्यात्मिकता में है, भौतिकता में नहीं। साधना का मौलिक आधार यहाँ भावना है, श्रद्धा है। आग्रह और बलात्कार को यहाँ प्रवेश नहीं है। जब साधक जाग उठे, तभी से उस का सवेरा समझा जाता है। सूर्यरश्मियों के संस्पर्श से कमल खिल उठते हैं। शिष्य के प्रसुप्त मानस को गुरु जाग्रत करता है, चलना उसका अपना काम है।

आगम वाङ्मय का गंभीरता से परिशीलन करनेवाले मनीषी इस तथ्य को भली भांति जानते हैं कि परम प्रभु महावीर प्रत्येक साधक को एक ही मूलमन्त्र देते हैं, कि 'जहा सुहं देवाणुप्पिया मा पडिबंधं करेह" देव वल्लभ मनुष्य! जिस में तुझे सुख हो, जिस में तुझे शान्ति हो, उसी साधना में तू रम जा। परन्तु एक शर्त जरूर है,—"जिस कल्याण-पथ पर चलने का तू निश्चय कर चुका है, उस पर चलने में विलम्ब मत कर, प्रमाद न कर।"

इस का तात्पर्य इतना ही है, कि जैन धर्म की साधना के मूल में किसी प्रकार का बलप्रयोग नहीं है, बलात्कार से यहाँ साधना नहीं कराई जाती है। साधक अपने आप में स्वतन्त्र है। उस पर किसी प्रकार का आग्रह और दबाव नहीं है। भय और प्रलोभन को भी यहाँ अवकाश नहीं है। सहज भाव से जो हो सके, वही सच्ची साधना है। आत्म-कल्याण की भावना लेकर आनेवाले साधकों में वे भी थे जो अपने जीवन की सन्ध्या में लड़खड़ाते चल रहे थे वे भी थे, जो अपने जीवन के वसन्त में अठखेली कर चल रहे थे, और वे भी थे जो अपने गुलाबी जीवन में अभी प्रवेश ही कर पाए थे। किन्तु भगवान् ने सब को इच्छा-योग की ही देशना दी—"जहासुहं देवाणुप्पिया......।" जितना चल सकते हो चलो, बढ़ सकते हो, बढ़ो।

अतिमुक्तकुमार आया, तो कहा—आ तू भी चल। मेघकुमार आया, तो कहा—आ और चला चल। इन्द्रभूति आया और हरिकेशी आया—सब को बढ़े चलो की अमृतमयी प्रेरणा दी। चन्दन बाला आई तो उस का भी स्वागत। राह सब की एक है, परन्तु गति में सब के अन्तर है। कोई तीव्र गति से चला, कोई मन्द गति से। गति सब में हो। मन्दता और तीव्रता शक्ति पर आधारित है, यही इच्छायोग है, यही इच्छाधर्म है, यही सहजयोग की साधना है।

गाथापति आनन्द आया। कहा—भंते! श्रमण बन सकने की क्षमता मुझमें नहीं है। महाप्रभु ने अमृतमयी वाणी में कहा—"जहा सुहं......।" श्रमण न सही, श्रावक ही बनो। सम्राट् श्रेणिक आया। कहा—भंते! मैं श्रावक भी नहीं बन सकता। यहाँ पर भी वही इच्छायोग आया—"जहा सुहं......।" श्रावक नहीं बन सकते, तो सम्यग्दृष्टि ही बनो। जितनी शक्ति है, उतना ही चलो। महामेघ बरसता है और जितना पात्र होता है, वैसा और उतना ही जल प्राप्त हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म एक विशाल और विराट धर्म है। यह मनुष्य की आत्मा को साथ लेकर चलता है। यह किसी पर बलात्कार नहीं करता। साधना में मुख्य तत्त्व सहज भाव और अन्तःकरण की स्फूर्ति है। अपनी इच्छा से और स्वतः स्फूर्ति से जो धर्म किया जाता है, वस्तुतः वही सच्चा धर्म है, शेष धर्माभास मात्र होता है।

जैन धर्म में किसी भी साधक से यह नहीं पूछा जाता कि तू ने कितना किया है? वहाँ तो यही पूछा जाता है, कि तू ने कैसे किया है? सामायिक, पौषध या नवकारसी करते समय तू शुभ संकल्पों में, शुद्ध भावों के प्रवाह में बहता रहा है या नहीं? यदि तेरे अन्तर में शांति नहीं रही, तो वह क्रिया केवल क्लेश उत्पन्न करेगी—उससे धर्म नहीं होगा। क्योंकि "यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः।"

जैन धर्म की साधना का दूसरा पहलू यह है कि मनुष्य अपनी शक्ति का गोपन कभी न करे। जितनी शक्ति है, उस को छुपाने की चेष्टा मत करो। शक्ति का दुरुपयोग करना यदि पाप है, तो उसका उपयोग न करना भी पापों का पाप है—महापाप है। अपनी शक्ति के अनुरूप जप, तप और त्याग जितना कर सकते हो, अवश्य ही करो। एक आचार्य के शब्दों में हमें यह कहना ही होगा—

"जं सक्कइ तं कीरइ, जं च न सक्कइ तस्स सद्दहणं।
सद्दहमाणो जीवो, पावइ अजरामरं गणं॥"

"जिस सत्कर्म को तुम कर सकते हो, उसे अवश्य करो। जिस को करने की शक्ति न हो, उस पर श्रद्धा रखो, करने की भावना रखो। अपनी शक्ति के तोल के मोल को कभी न भूलो।"

आचारांग में साधकों को लक्ष्य कर के कहा गया है—"जाए सद्धाए निक्खंता तमेव अणुपालिया।" साधको! तुम साधना के जिस महामार्ग पर आ पहुँचे हो, अपनी इच्छा से,—उस का वफादारी के साथ पालन करो। श्रावक हो, तो श्रावक कर्म का और श्रमण हो, तो श्रमण धर्म का श्रद्धा और निष्ठा के साथ पालन करो। साधना के पथ पर शून्य मन से कभी मत चलो। सदा मन को तेजस्वी रखो। स्फूर्ति और उत्साह रखो। कितना चले हो, इस की ओर ध्यान मत दो। देखना यह है कि कैसा चले हैं। चित्र-मुनि ने चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त को कहा था—"राजन्, तुम श्रमणत्व धारण नहीं कर सकते, कोई चिन्ता की बात नहीं। तुम श्रावक भी नहीं बन सकते, न सही। परन्तु, इतना तो करो कि अनार्य कर्म मत करो। करना हो, तो आर्य कर्म ही करो।"

इस से बढ़कर इच्छायोग और क्या होगा? इस से अधिक सरल और सहज साधना और क्या होगी? जैन धर्म का यह इच्छा योग मानव समाज के कल्याण के लिए सदा द्वार खोले खड़ा है। इस में प्रवेश करने के लिए धन, वैभव और प्रभुत्व की आवश्यकता नहीं है। देश, जाति और कुल का बन्धन भी नहीं है। आवश्यकता है, केवल अपने सोए हुए मन को जगाने की, और अपनी शक्ति को तोल लेने की।

आज के अशान्त मानव को जब कभी शांति और सुख की जरूरत होगी, तो उसे इस सहज धर्म-इच्छायोग की साधना करनी ही होगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org